1

सामाजिक क्रान्तिकारी अम्बेडकरः एक चिन्तन

अश्वनी कुमार एवं नीलम कुमारी***

भारत रत्न बाबा साहेब डॉ0भीमराव अम्बेडकर का साहित्य आज विविध रूपों में व्यापक रूप से उपलब्ध है तथा उनके विचारों व कार्यों पर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गहन शोध किया गया है। डॉ0 अम्बेडकर का चिन्तन भारतीय समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था, धर्म एवं न्याय व्यवस्था के विविध पहलुओं को गहराई से छूता है। उनके विचारों ने न केवल भारत के सामाजिक ढाँचे में क्रान्तिकारी परिवर्तन की नींव रखी, बल्कि विश्व स्तर पर समानता, मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय की अवधारणाओं को नया दृष्टिकोण प्रदान किया। इस परिप्रेक्ष्य में समाजवादी विचारक मधु लिमये द्वारा रचित पुस्तक 'डॉ0 अम्बेडकरः एक चिन्तन' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह पुस्तक डॉ0 अम्बेडकर के समग्र चिन्तन को समझने की एक गम्भीर व सन्तुलित कोशिश करती है। इसमें लेखक ने अम्बेडकर के सामाजिक, राजनीतिक एवं बौद्धिक योगदानों का मूल्यांकन करते हुए उन्हें एक बहुआयामी व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया है। मधु लिमये ने न केवल डॉ0 अम्बेडकर की विचारधारा की गहराई को उजागर किया है, बल्कि उनके जीवन संघर्षों, कार्यप्रणाली एवं भारतीय संविधान निर्माण में उनकी भूमिका को भी सुस्पष्ट किया है। यह शोधपत्र इस पुस्तक के आलोक में डॉ0 अम्बेडकर के बहुआयामी व्यक्तित्व एवं विचारधारा को सन्दर्भ सहित समझने का प्रयास करता है। इसमें उनके द्वारा उठाए गए मुद्दों जैसे जाति उन्मूलन, सामाजिक समानता, श्रमिक अधिकार, स्त्री स्वतन्त्रता, शिक्षा का महत्त्व, धर्म एवं नैतिकता की भूमिका का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। शोधपत्र का उद्देश्य डॉ0 अम्बेडकर के विचारों की वर्तमान प्रासंगिकता को समझना एवं उनके चिन्तन को समाज के विभिन्न वर्गों तक पहुँचाना है। यह डॉ0 अम्बेडकर के चिन्तन की गहराई एवं उसकी सामाजिक प्रभावशीलता का एक साक्ष्यात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है, जो आधुनिक भारत के निर्माण एवं सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को समझने में सहायक सिद्ध होगा।

[**प्रमुख शब्द :** स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व, न्याय, करुणा, प्रज्ञा, प्रेम, अहिंसा।]

* **प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मोतीलाल नेहरू कालेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।**

** **एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जाकिर हुसैन दिल्ली कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।**

आधुनिक भारत की राजनीति में नब्बें का दशक बहुत महत्त्वपूर्ण मोड़ है, जब भारतीय राजनीति बहुत तेजी से करवट ले रही थी। सम्पूर्ण भारत में खासकर हिन्दी पट्टी में बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर के चिन्तन, दर्शन और आन्दोलन का प्रभाव तेजी से जनमानस में बढ़ रहा था। देश को सबसे ज्यादा सांसद देने वाले प्रदेश उत्तर प्रदेश में मान्यवर कांशीराम के नेतृत्व 1984 में 'बहुजन समाज पार्टी' का गठन हुआ। 1989 में प्रधानमन्त्री के पद पर बी0 पी0 सिंह का आना और उनके द्वारा डॉ0 अम्बेडकर को 31 मार्च 1090 को देश का सर्वोच्च सम्मान 'भारत रत्न' से सम्मानित करना समस्त देशवासियों के लिए गौरव का पल था। दलित, आदिवासी, स्त्री, पिछड़ों को लिए तो यह ओर भी उत्सव का विषय था। बाबा साहेब डॉ0 आबेडकर पर अब महत्त्वपूर्ण साहित्य तेजी से प्रकाशित होने लगा था।

समाजवादी विचारक एवं कार्यकर्ता मधु लिमये की *'डॉ0 अम्बेडकर : एक चिन्तन'* (1989) पुस्तक महत्त्वपूर्ण बन जाती है। मूल पुस्तक अंग्रेजी में लिखी गयी थी तथा बाद में मराठी और हिन्दी में प्रकाशित हुई। हिन्दी में अनुवाद मस्तराम कपूर ने किया है। पुस्तक सरदार वल्लभाई पटेल एजुकेशनल सोसायटी, नई दिल्ली से प्रकाशित हुई थी। पुस्तक को लेखक ने फुले दम्पति अर्थात् सावित्रीबाई फुले और जोतिबा फुले को समर्पित की है। पुस्तक दस अध्यायों में विभक्त है—'सामाजिक क्रान्तिकारी अम्बेडकर', 'जाति-संस्था के उन्मूलन का आह्वान', 'अम्बेडकर और गांधी', 'पृथक् निर्वाचक-मम्डल की माँग और येरवडा समझौता', 'अम्बेडकर की पाकिस्तान विषयक भूमिका', 'सशक्त केन्द्र के लिए', 'भाशावर प्रान्त-रचना और अम्बेडकर', 'कानून मन्त्री अम्बेडकर', 'अम्बेडकर के आर्थिक विचार', 'अम्बेडकर और धर्म-परिवर्तन'। पुस्तक की प्रस्तावना लक्ष्मण शास्त्री जोशी ने लिखी है।

प्रथम अध्याय 'सामाजिक क्रान्तिकारी अम्बेडकर' में लिमये ने डॉ0 अम्बेडकर को बीसवीं सदी के महानतम व्यक्तियों में से एक माना हैं। लिमये अपनी सत्रह वर्ष की उम्र में ही डॉ0 अम्बेडकर के मुरीद हो गए थे; वह कहते हैं कि, ''अपनी सत्रह वर्ष की अवस्था से पहले ही मैं उनके व्यक्तित्व से मोहित हो गया था।''[1] जबकि दूसरी तरफ लिमये डॉ0 अम्बेडकर के प्रति कांग्रेस पार्टी के व्यवहार को भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि, ''कांग्रेस के अनुयायी डॉ0 अम्बेडकर से बहुत द्वेष करते थे।''[2] इस द्वेष के कारण में देखा जाए तो डॉ0 अम्बेडकर पर कांग्रेसी और दूसरे हिन्दुत्ववादी मानसिकता के पुरोधा आरोप लगाते थे कि वह अंग्रेजों के हितेशी हैं। उसके जवाब में लिमये ने कड़े शब्दों में इन लोगों को कहा कि, ''मेरे मन में कभी यह बात आई ही नहीं कि वे कांग्रेस के नेताओं से देशभक्ति में किसी प्रकार कम थे। केवल उनकी प्राथमिकताएँ भिन्न थीं। वे दो हजार साल से चले आ रहे सवर्ण हिन्दुओं के छल और अत्याचार से लड़ना चाहते थे और सामाजिक समता की स्थापना करना चाहते थे। उनके लिए यह सबसे अधिक महत्त्व का प्रश्न था।''[3] उस समय के समाचार पत्र न तो बाबा साहेब के विचार को जगह देते थे बल्कि उनका उपहास उड़ाते थे कि, ''मुझे लगता था कि उनका भी एक पक्ष है और राष्ट्रवादी समाचार-पत्र और कांग्रेस के लोग नाहक उनका उपहास करते थे।''[4]

लिमये प्रथम अध्याय में डॉ0 अम्बेडकर के जन्म, उनकी शिक्षा, बड़ौदा के महाराजा द्वारा दी गई आर्थिक सहयोग, पारसी होटल में आश्रय लेने पर जाति के कारण उनको जान से मारने की कोशिश, चपरासी द्वारा फाईलों को हाथ में न देकर मेज पर फेंकना आदि अनेक प्रसंगों का संक्षेप में प्रकाश डालते हैं। विस्तार में अगर इन घटनाओं को जानना हो तो *'वेटिंग ऑफ विजा'* पुस्तक पुस्तक पढ़ना आवश्यक है जिसका लेखक डॉ0 अम्बेडकर है। डॉ0 अम्बेडकर जैसे महान् व्यक्ति के साथ जब जातिवादी सवर्णों ने इतना अमानवीय व्यवहार किया तब समझा जा सकता कि उस समय सामान्य दलित व्यक्ति और समाज की क्या दशा रही होगी? भारत में आज भी हर दिन 'जाति', 'लिंग' 'धर्म' के कारण दलित, स्त्री, अल्पसंख्यकों को हिंसा का शिकार होना पड़ता हैं।

सन 1919 में शासन-सुधार को लेकर राजनीतिक हलकों में बहुत उत्तेजना थी। सन् 1917 में जब एडविन मांटेग्यू भारत आया था तब भारतीयों के हाथ में उत्तरदायी शासन सौंपने का वायदा किया था जिसको लेकर जिन्ना और कांग्रेस ने 'लखनऊ योजना' नाम दिया। इस समझौते में मुसलमानों के लिए पृथक् निर्वाचक मण्डल के सिद्वान्त को स्वीकार किया गया था, जबकि इसके बदले में मुस्लिम नेताओं ने पंजाब और बंगाल में अपनी संख्या के अनुपात में कम प्रतिनिधित्व लेने की बात मानी थी। प्रश्न यहाँ यह उठता हैं कि देश के दलितों को इसमें क्या मिला?

1918 में 'मोंटफोर्ट रिपोर्ट' के प्रकाशित होने के बाद मद्रास और बम्बई के गैर-ब्राह्मण समाज द्वारा आरक्षण की माँग रखी। प्रतिनिधित्व के प्रश्न की पूछताछ करने वाली 'साउथबरा समिति' में डॉ0 अम्बेडकर ने जो प्रश्न और सुझाव प्रस्तुत किए जिनमें पृथक् निर्वाचक मण्डल, संयुक्त निर्वाचक मण्डल, बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र अथवा आरक्षित क्षेत्र, मिल में कामरत दलित मजदूरों के श्रम और उनके साथ बरते जाने वाली गैर-बराबरी, व्यापार में दलितों की शून्य भागीदारी, नौकरियों में दलितों के लिए कोई जगह नहीं आदि प्रश्नों से उनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण बन गई। सभी प्रश्न तार्किक और तथ्यों पर आधरित थे।

सेना में दलितों की नौकरियों के सम्बन्ध में डॉ0 अम्बेडकर बताते हैं कि, ''ईस्ट-इंडिया कम्पनी के शासन के दौरान दलित वर्गों के लिए कम-से-कम सेना की नौकरियों का रास्ता खुला था। उन्होंने बताया कि 1859 में माक्विस ट्वीडलडेल ने भारतीय सेना आयोग के समक्ष एक टिप्पणी रखी। इससे अम्बेडकर ने उद्वरण दिया, यह बात कभी नहीं भुलाई जानी चाहिए कि छोटी जाति के लोगों की सहायता से भारत को जीत गया। कम-से-कम पश्चिम भारत के सम्बन्ध में यह बात बिल्कुल सही थी। इसके विपरीत, बंगाल आर्मी में ऊँची जातियों का प्रभुत्व था। विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने मराठों को सेना में भरती करना षुरू किया। इन नये भर्ती होने वालों में जातीय पूर्वाग्रह इतना प्रबल था कि छोटी जाति के अधिकारियों के नीचे काम करने से उन्होंने साफ इनकार कर दिया। इसके फलस्वरूप दलित जातियों की सेना में भरती बंद कर दी गई।''[5]

'साथबरा समिति' 1919 के समक्ष प्रस्तुत डॉ0 अम्बेडकर के ज्ञापन को मधु लिमये सामजिक और राजनीति दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण मानते हैं कि, ''एक तो इसलिए कि उनके सामाजिक एवं राजनीतिक विचार इस ज्ञापन में संक्षिप्त रूप से व्यक्त हुए थे और दूसरे इसलिए

कि इसमें उनके भावी कार्यक्रम पर प्रकाश पड़ता था।''[6] लिमये ने डॉ0 अम्बेडकर के तिलक-वादियों, गरमदलों, बुद्विजीवी-ब्राह्मण व ब्राह्मण-बुद्विजीवी के आदि प्रसंगों की यहाँ चर्चा की है। बाबा साहेब के द्वारा असहायों के लिए वकालत करना, 'बहिस्कृत हितकारिणी सभा' का समाज-सुधार के लिए तैयार करना, खुद की पत्र-पत्रिकाएँ निकालना आदि कार्यों के सम्बन्ध में लिमये कहते हैं कि, ''तीसरे दशक में सरकारी कागजपत्रों में अम्बेडकर को बहुत विद्वान और प्रभावशाली व्यक्ति कहा गया।''[7] 1920 के अन्तिम दिनों में डॉ0 अम्बेडकर कानून और अर्थशास्त्र की शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा जागी। तब कोल्हापुर के महाराज छतपति शाहू जी ने उनकी मदद की। शाहू जी ने ही पहली बार आरक्षण व्यवस्था को लागू किया। शाहू जी महाराज ब्राह्मणशाही के कट्टर विरोधी थे। दलितों के प्रति उनके हृदय में सहानूभूति थी।

'साइमन कमाशन' 3 फरवरी 1928 को भारत आया था । इस आयोग का काम भारत सरकार अधिनियम 1919 की समीक्षा करने था। क्लीमेंट एटली जो दूसरे विश्वयुद्व के बाद ब्रिटेन में लेबरपार्टी के प्रधानमन्त्री बने वह कमीषन के सदस्य बनकर भारत आए। डॉ0 अम्बेडकर और मेजर एटली के बीच दलित मजदूरों के श्रम और मेहनताना, सवर्ण ठेकेदारों द्वारा बरती जाने वाली गैर-बराबरी को लेकर जो सवाल जवाब हुए उससे समाजवादियों और साम्यवादियों के आदर्शवादी स्वप्न को धक्का लगा। मधु लिमये ने कहा कि, ''भारत के समाजवादियों तथा साम्यवादियों में औद्योगीकरण एवं आधुनिकीकरण के बारे में अंधश्रद्वा थी। उनका दृढ़विश्वास था कि औद्योगीकरण से पुराने पूर्वाग्रह, धार्मिक विरोध और जातिगत निष्ठाएँ समाप्त हो जाएँगी और मजदूरों में एकजुटता और वर्ग-चेतना आएगी।.....किन्तु भारत की वस्तुस्थिति इस खुशफहमी को तोड़ने वाली थी।''[8]

डॉ0 अम्बेडकर असमानता के कट्टर विरोधी थे। इसी कारण 1930 के आस-पास मिल मजदूरों की लम्बी हड़ताल हुई थी जिसमें साम्यवादियों ने डॉ0 अम्बेडकर को आमन्त्रित किया था जिसको बाबा साहेब ने खारिज कर दिया; उन्होंने कहा जब 'मजदूरों के साथ गैर-बराबरी करते हो तब तुम्हें हमारी याद नहीं आती।' लिमये ने इस प्रसंग को भी पुस्तक में विस्तार से प्रस्तुत किया है।

डॉ0 अम्बेडकर ने महाड़ आन्दोलन में सिविल नाफरमानी का रास्ता लिया था। इस विषय में लिमये कहते हैं कि, ''किन्तु आश्चर्य है कि इक्कीस वर्ष बाद धारा-सभा में अन्तिम भाषण करते हुए उन्होंने सिविल नाफरमानी को 'अराजकतावाद का व्याकरण' कहा। चौथे दशक में उन्होंने नासिक में मन्दिर-प्रवेश के लिए सत्याग्रह किया। कुल मिलाकर अम्बेडकर का सीधी कार्यवाही पर विश्वास नहीं था। संवैधानिक तथा लोकतान्त्रिक रास्ता उन्हें प्रिय था और केवल अन्तिम हथियार के रूप में सिविल नाफरमानी को उन्होंने स्वीकारा था।''[9]

डॉ0 अम्बेडकर वंचित समाज की स्वतन्त्रता, समानता और भाईचारे के हितों के लिए लगातार संधर्षरत रहे। 'गोलमेज सम्मेलन', बंबई की विधान परिषद् में दलितों के प्रतिनिधित्व का सवाल हो, 1935 में संविधान अधिनियम के अनुसार जो चुनाव हुए उसमें अपनी पार्टी —'स्वतन्त्र मजदूर पार्टी' के आरक्षित सीटों की बात करना हो, 4 अप्रैल, 1938 में कर्नाटक के लिए अलग प्रान्त के निर्माण के प्रस्ताव का हो, उन्होंने हमेशा देश को सर्वोपरि रखा—''मैं

चाहता हूँ कि लोग पहले भी भारतीय हों और अन्त तक भारतीय रहें, भारतीय के अलावा कुछ नहीं।'' उनके लिए देश प्रमुख था, परन्तु जब देश और वचिंत समाज के कल्याण की बात होगी तब वचिंत समाज प्रथम होगा। परन्तु जब देश और डॉ0 अम्बेडकर के बीच फैसला करना होगा तब देश प्रथम होगा।

मधु लिमये ने तत्कालीन बंबई (आज का मुम्बई) के मुख्यमन्त्री बी0जी0 खेर और डॉ0 अम्बेडकर के बीच हुए बहस को सामने रखा है। खेर का यह कहना कि आप और आपका समाज समग्र का हिस्सा हैं; तब देश से कैसे बड़े हो गए? डॉ0 अम्बेडकर कहते हैं कि, ''मैं आपके समग्र का अंश नहीं हूं। मैं एक अलग अंश हूं।''[10]

द्वितीय अध्याय 'जाति-संस्था के उन्मूलन का आह्वान' नाम से है। डॉ0 अम्बेडकर ने 9 मई, 1916 में निबन्ध लिखा—'भारत में जातिः उद्‌गम विकास और स्वरूप'। यह निबन्ध डॉ0 ए0ए0 गोल्डनविजर द्वारा आयोजित 'नृतत्व विज्ञान' विषयक गोष्ठी में पढ़ा गया था। उस समय डॉ0 अम्बेडकर मात्र पच्चीस वर्ष के थे। तरूण अवस्था में इतना गम्भीर और विद्वतापूर्ण लेखन के विषय को लेकर लिमये कहते हैं कि, ''इस निबन्ध में उन्होंने अपनी वय की तुलना में आश्चर्यजनक परिपक्वता तथा आकलन शक्ति दिखाई। उनसे पूर्व कई विद्वानों ने इस विषय को उठाया था, किन्तु इन विद्वानों के विश्लेशण अथवा अनुमानों से अम्बेडकर को सन्तोष नहीं हुआ और न ही वे समाजशास्त्र के क्षेत्र में प्रसिद्व बड़े-बड़े नामों से घबराए। उनके निबन्ध में स्पष्टता और साहस के गुण थे। उनके लेखन में प्रथम निबन्ध से लेकर अन्तिम तक ये दोनों गुण निरन्तर बने रहे।''[11]

'जाति' की उत्पति को रेखांकित करते हुए डॉ0 अम्बेडकर का कहना हैं कि, ''यह कहना कि व्यक्ति ही समाज को बनाते हैं बहुत सतही कथन है। वर्गों के मिलने से समाज बनता है। समाज के भीतर वर्ग होते हैं। उन वर्गों के आधार अलग-अलग हो सकते हैं। आधार आर्थिक, बौद्विक या सामाजिक हो सकते हैं, किन्तु व्यक्ति हमेशा समूह का सदस्य होता है।.....किस वर्ग ने सबसे पहले अपने को जाति के रूप में स्थापित किया, क्योंकि वर्ग और जाति निकटवर्ती संकल्पनाएँ हैं और कालान्तर में ही दोनों अलग-अलग होती हैं। बन्द या जमा हुआ वर्ग ही जाति है।''[12]

डॉ0 अम्बेडकर का कहना है कि जब समूह के बाहर शादी होना बन्द हो गया और उसकी जगह 'असगोत्र' या 'बर्हिगोत्र' विवाह होने लगे तब यहाँ से वर्ग 'जाति' में परिणित होता है। अम्बेडकर के विचार में वैवाहिक इकाई में स्त्री पुरुषों की संख्यामूलक असमानता को दूर करने का प्रयास ही जाति का मूल है।

डॉ0 अम्बेडकर ने विस्तार से परत दर परत जाति जैसे जटिल विषय को परिभाषित किया है। उनका कहना था कि ब्राह्मणों ने अपने को 'विशेष वर्ग' बनाने की पहल की जो आगे जाकर जाति में परिवर्तित हो गया है। बाद में उनके देखा-देखी या कहें कि नकल करके दूसरें वर्गों ने भी इस मार्ग को अपनाया, जिससे जाति एक बन्द या जमा हुआ वर्ग हो गया तथा जिसके बाहर निकलना नामुमकिन हो गया। इस नकल को शूद्रों ने भी अपनाया। इसके लिए ब्राह्मणों ने चार रास्ते अपनाए—1. सती-प्रथा अर्थात् मृत पति की चिता पर जीवित पत्नी को जलाना; 2. वैधव्य

के कड़े नियम जिनके अनुसार विधवा स्त्री को पुनर्विवाह की अनुमति नहीं थी; 3. बाल-विवाह; तथा 4. संन्यास।

बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर चुटकी लेते हुए कहते हैं कि, ''प्रथा के पालन के अनुपात में हिन्दू समाज में जाति का स्तर निर्धारित होता है। पेशवा काल में महाराष्ट्र के पाठारे प्रभु समाज ने विधवा-विवाह पर पाबन्दी लगाकर अपनी जाति का स्तर ऊँचा करने का प्रयत्न किया, तब पेशवाओं ने विधवा पुनर्विवाह की रस्म कायम रखने के लिए हस्तक्षेप किया था। पेशवाओं ने यह आदेश समाज-सुधार के दृष्टिकोण से नहीं किया था, बल्कि इसलिए निकाला था कि पाठारे समाज को ऊँचा दर्जा न मिले। कायस्थों द्वारा यज्ञोपबीत धारण करने और इस तरह क्षत्रियों के बराबर दर्जा प्राप्त करने की कोशिशों को भी पेशवाओं ने नाकाम बनाने का प्रयास किया। इस प्रकार आगे वे कहते हैं 'कुछ ने अपने दरवाजे खुद बन्द कर लिए और बाकियों के दरवाजे बन्द कर दिए गए।''

पश्चिमी इतिहासकारों का हवाला देते हुए डॉ0 अम्बेडकर कहते है कि आर्नल्ड टायनबी ने जिसे 'अनुकरण की प्रक्रिया' कहा है जबकि स्वयं डॉ0 अम्बेडकर उसे 'अनुकरण का संक्रमण' कहते है। उनके अनुसार, ''अन्य वर्गों में विभेदीकरण की अनिष्टकारी प्रक्रिया चली, जिससे उन्होंने अपने को बन्द कर लिया तथा दूसरों के लिए अपने दरवाजे बन्द कर लिए।''[13] वाल्टर बेजाट जैसे विद्वानों का जिक्र करते हुए डॉ0 अम्बेडकर कुछ प्रक्रियाओं का हवाला देते हैं; जिसके कारण जाति कठोर बना दी गई। जाति-नियमों को तोड़ने का साहस करने वाले गुनाहगार के लिए कोई दया जाति-व्यवस्था में नहीं है। जिन्हें जाति से बाहर फेंक दिया जाता था उनके लिए अपनी जाति बनाने के अलावा कोई चारा नहीं था। जाति का तर्कशास्त्र इतना कठोर था कि बहिष्कृत होने पर नए-नए समूह लगातार बनते गए। इस क्रूर नियम ने सामाजिक समूहों को असंख्य जातियों में बदल दिया।

जाति के उद्‌गम के सम्बन्ध में वंश या नस्ल के सिद्वान्त को डॉ0 अम्बेडकर नहीं मानते थे। उनकी मान्यता था कि भारत का समाज वंश या नस्ल की दृष्टि से शुद्व नहीं था। यह एक मिश्रित समाज था, कई नस्लों का मिला-जुला समाज। वह डॉ0 केलकर की मान्यता से सहमत थे कि कोई परिवार या कबिला आर्य-नस्ल का या द्रविड़-नस्ल का, इस सवाल ने विदेशियों के आने से पहले भारतीयों को कभी परेशान नहीं किया। त्वचा के रंग का यदि कभी महत्त्व भी रहा होगा तो भी एक लम्बे अर्से से वह महत्त्व खत्म हो चुका है। त्वचा के रंग को लेकर जो समाचार पत्रों में वैवाहिक विज्ञापन आते हैं वह पश्चिमी विरासत की देन है। डॉ0 अम्बेडकर प्राचीन हिन्दू-सभ्यता की सर्वोतम साहित्यिक अभिव्यक्ति कालिदास से देते हुए कहते है कि कालिदास ने तन्वीश्यामा को स्त्री का एक आदर्श रूप कहा है अर्थात् श्याम वर्णीय स्त्री। राम और कृष्ण पौराणिक नायकों को श्याम वर्णीय ही कहा गया हैं अर्थात् नस्ल या वंश का सवाल ठीक नहीं है। उन्होंने अपने विश्लेशण का निष्कर्ष वंश और नस्ल के कारकों की उपेक्षा करके निकाला। ''वंश दृष्टि से सभी लोग संकर हैं। सांस्कृतिक एकता उनकी एकरूपता का कारण है। इस बात को मानकर चलते हुए मैं यह कहने का साहस कर सकता हूं कि संकर रचना के बावजूद सांस्कृतिक एकता में कोई भी देश भारत का मुकाबला नहीं कर सकता है। इसमें न केवल भौगोलिक एकता

है अपितु उससे ज्यादा गहरी और मूलभूत एकता है, सांस्कृतिक एकता जो एक छोर से दूसरे छोर तक सारे देश में व्याप्त है। लेकिन इस संस्कृतिजन्य एकरूपता के कारण ही जाति की गुत्थी को सुलझाना अत्यन्त कठिन है। यदि हिन्दू-समाज परस्पर लिंग-इकाइयों का संघ होता तो यह समस्या आसान होती। किन्तु जाति, समरूप सांस्कृतिक इकाई के विभक्तिकरण का परिणाम है और जाति के उगद्म का स्पष्टीकरण इस विभक्तिकरण की प्रक्रिया में खोजा जा सकता है। मेरा कहना है कि शुरू में एक समूह था और अनुकरण तथा बहिष्कार की प्रक्रियाओं से समूह ने जातियों का रूप ले लिया।''[14]

मघु लिमये ने डॉ0 अम्बेडकर के बौद्विक श्रम के विषय में कहते हैं कि, ''तरूण अवस्था में अम्बेडकर के द्वारा किए गए बौद्विक श्रम का विस्तार से जिक्र मैंने इसलिए नहीं किया है कि यह उनका प्रथम निबन्ध था, बल्कि इसलिए कि गुणवत्ता की दृष्टि से यह उच्च कोटि का है। यदि उन्होंने इस निबन्ध के अतिरिक्त और कुछ न लिखा होता तो भी उनकी गणना अच्छे विचारकों में होती।....अब भारतीय समाज के सबसे अधिक सताए हुए वर्ग से एक ऐसा व्यक्ति निकला था जिसे एक दिन उसके विरोधी भी एक दिग्गज बुद्विजीवी के रूप में स्वीकार करेंगे।''[15]

मघु लिमये ने इस अध्याय में जाति के सिद्वान्त और इसके उन्मूलन के संघर्ष की दूसरी अवस्था 1927-28 की घटना 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' को लिया है। सभा ने डॉ0 अम्बेडकर के नेतृत्व में समाज-सुधार के लिए अनेक कार्य किए, जैसे महाड़ आन्दोलन, मन्दिर प्रवेश आन्दोलन, 'मनुस्मृति दहन' आन्दोलन आदि। लिमये मनुस्मृति दहन के पर कहते है कि कि, ''यह विरोध का प्रतीक था और भारत के इतिहास में यह स्मरणीय दिन था। जाति-व्यवस्था पर चारों तरफ से हल्ला बोला गया था। सारे भारत में सनातनी हिन्दुओं में रोष की लहर दौड़ गई। किन्तु विद्रोही डॉ0 अम्बेडकर अडिग रहे।''[16] लिमये ने कहा कि, ''डॉ0 अम्बेडकर मात्र सिद्वान्तवादी नहीं थे, बल्कि एक कर्मनिष्ठ और जुझारू व्यक्ति थे।''[17]

जाति के उन्मूलन के संघर्ष की तीसरी अवस्था 'जाति का उन्मूलन' 1936 निबन्ध है। यह कृति विश्व में सबसे ज्यादा पढ़े जाने वाली पुस्तकों में से एक हैं। 1935 में 'जाति पॉति तोड़क मण्डल' ने डॉ0 अम्बेडकर को अध्यक्षता के लिए लाहौर अधिवेशन में आमन्त्रित किया था। डॉ0 अम्बेडकर ने मण्डल के बहुत अनुरोध पर संस्था को अपना निबन्ध भेजा। मण्डल निबन्ध में कुछ परिवर्तन चाहता था परन्तु डॉ0 अम्बेडकर ने कोई परिवर्तन नही किया क्योंकि वह जाति के सवाल पर कोई समझौता नही करना चाहते थे। मधु लिमये इस निबन्ध के विषय में कहते हैं कि, ''मेरे विचार से यह भाषण जाति-व्यवस्था पर डॉ0 अम्बेडकर की सबसे प्रभावशाली कृति है। यह निर्मम तर्क और युक्ति पर आधारित है। तथापि इसमें इतनी आग है कि इसकी तुलना कार्ल मार्क्स और एंगेल्स द्वारा लिखित मैनिफैस्टो से ही की जा सकती है। हम भारतीय के लिए तो यह कम्युनिस्ट मैनिफैस्टो से भी अधिक प्रासंगिक है।''[19] डॉ0 अम्बेडकर कांग्रेस के भीतर होने वाली राजनीति को बहुत अच्छे से समझते थे। उस समय कांग्रेस में दो हिस्से बन गए थे। एक हिस्सा राजनीतिक चेतना की बात करता था जिसका नेतृत्व बाल गंगाधर तिलक कर रहे थे जबकि दूसरा वर्ग सामाजिक चेतना

की बात करता है। तिलक ने सामाजिक चेतना के मुद्दे को गौण माना और इस पर होने वाले कांफ्रेस का बहिष्कार ही नही किया, पांडाल को जलाने की बात कहीं।

डॉ0 अम्बेडकर इस निबन्ध में पेशवा साम्राज्य के द्वारा दलितों पर होने वाले अमानीय, हिंसक, कठोर यातनओं को विस्तार से पेश करते हैं। दलितों को सार्वजनिक सड़कों पर चलने नहीं दिया जाता था। उन्हें अपनी पहचान के लिए काला डोरा कलाई पर बांधना पड़ता था। कमर में झाड़ू बांधकर चलना पड़ता था । गले में मिट्टी की हांडी बाँधना पड़ता था। उन्होंने इन्दौर की घटनाओं का भी वर्णन किया है। डॉ0 अम्बेडकर का कहना था कि जो अपने हिन्दू भाईयों के साथ समानता का व्यवहार नहीं कर सकता; क्या उसको देश की सत्ता सौंपी जा सकती है? केवल बाल-विवाह, सती-प्रथा पर रोक लगाने से बुनियादी सुधार नहीं हो सकता। बुनियादी तौर पर परिवर्तन तभी आ सकता है जब जाति व्यवस्था को जड़ से खत्म किया जाए।

सन् 1934 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी में विभाजन हो गया। एक नई पार्टी का गठन हुआ, जिसका नाम था कांग्रेस समाजवादी पार्टी। पार्टी का आधार आर्थिक सुधार के द्वारा सामाजिक सुधार लाना था। उन्होंने इस धारणा का खण्डन किया कि मानव आर्थिक प्रेरणा से ही कार्य में प्रवृत्त होता है और आर्थिक शक्ति ही सत्ता का एकमात्र स्रोत है। राजनीतिक सत्ता आर्थिक सत्ता से प्रभावित होती है। उनका कहना था कि व्यक्ति का सामाजिक वर्ग भी सत्ता का प्रभावशाली स्रोत होता है। जन-साधारण में महात्मा गांधी के इतने व्यापक प्रभाव को और कैसे स्पष्ट किया जा सकता है? भारत में करोड़पति निर्धन साधुओं और फकीरों की आज्ञा का पालन क्यों करते हैं? क्यों यहाँ करोड़ों निर्धन अपने छोटे-मोटे गहने बेचकर बनारस और मक्का जाते हैं? डॉ0 अम्बेडकर धर्म को सत्ता का स्रोत मानते थे। उन्होंने समाजवादियों और मार्क्सवादियों को चेताया कि यूरोप की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ भारत की परिस्थितियों से अलग हैं, जिनको समाधान पश्चिम के विचार से नहीं किया जा सकता। उनका मानना था कि धर्म, सामाजिक प्रतिष्ठा और सम्पत्ति तीनों ही शक्ति और सत्ता का स्रोत रहें है, जिनका इस्तेमाल आदमी ने दूसरों की स्वतन्त्रता को छीनने में किया है।

डॉ0 अम्बेडकर भारत में क्रान्ति के विचार को भी प्रस्तुत करते है। उनका मानना था कि भारत में हिन्दुओं की चतुर्वणीय परम्परा के कारण पश्चिम की तरह यहाँ क्रान्ति नही हो पायी। क्योंकि शास्त्र और शस्त्र पर शूद्रों का अधिकार नहीं था। इसी कारण भारत लम्बे समय तक विदेशा शक्तियों का गुलाम बना रहा; इसका कारण है जाति व्यवस्था। इसीलिए डॉ0 अम्बेडकर हिन्दू धर्म में मनुष्य के लिए समानता, स्वतन्त्रता और बन्धुत्व के रक्षा करने वाले विचारों को छोड़कर बाकि धर्म को नष्ट होने की बात करते है।

मधु लिमये डॉ0 अम्बेडकर के इस निबन्ध के आलोक में कहते हैं कि, ''यह भाषण 1936 में प्रकाशित हुआ। यह समाज सुधारकों, विशेष रूप से समाजवादियों को संबोधित था। मेरे विचार में यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि कांग्रेस समाजवादियों तथा साम्यवादियों ने वर्ग-संघर्ष और साम्राज्यवाद विरोधी उत्साह में अम्बेडकर के सामाजिक घोषणापत्र की उपेक्षा की।

मुझे लगता है कि समाजवादियों का दिमाग उन दिनों खुला नहीं था। जिन्ना की तरह अम्बेडकर के प्रति भी उनके मन में पूर्वाग्रह थे। वे सोचते थे कि मुस्लिम नेता की तरह डॉ0 अम्बेडकर भी अंग्रेजों से मिलकर राष्ट्रीय शक्तियों को कमजोर बना रहे हैं।''[20]

मधु लिमये स्वीकारते हैं कि, ''मैं 1937 में कांग्रेस समाजवादी पार्टी का सदस्य बना। मैंने समाजवादियों नेताओं को अम्बेडकर के जाति विषयक विचारों पर बहस करते कभी नहीं सुना। उनमें इतिहास और मार्क्स की भौतिक व्याख्या एक नशे की तरह काम करती थी और इसके अलावा आजादी की प्रबल इच्छा उन्हें बाँधे रखती थी। और इन बातों की तरफ समाजवादियों ने ध्यान नहीं दिया।''[21] जाति के सवाल को लेकर मधु लिमये कहते हैं, ''कांग्रेस समाजवादी पार्टी की मूलदृष्टि में 1950 तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ।''[22] उदाहरण में दामोदरस्वरूप सेठ का प्रसंग में लिमये कहते हैं कि, ''अत्यंत खेद की बात है कि उन्होंने अनुच्छेद 16 के खण्ड 4 का विरोध किया, जिसमें समाज के पिछड़े वर्गों को सरकारी नौकरियों में आरक्षण देने की बात कहीं गई थी।''[23]

मधु लिमये 'अम्बेडकर और गांधी' अध्याय में कहते है कि दोनों महान् व्यक्तियों ने अपने-अपने विचार और रास्ते से भारत को महान् बनाया। दोनों की शैलियों में अन्तर जरूर था परन्तु लक्ष्य दोनों के एक थे। गांधी के सन्दर्भ में लिमये कहते हैं कि, ''सन् 1919-20 के वर्षों में गांधी नाम की आँधी भारत में छा गई। यह आँधी रास्ते में आई हर चीज को अपने साथ उड़ा ले गई। स्थापित विचार, व्यवहार, गुट और नेता सब उखड़ गए। बहुत कम लोग इस आँधी के सामने डटे रह सके। गांधीवाद से अप्रभावित चन्द लोगों में अम्बेडकर और जिन्ना आते हैं।''[24] डॉ0 अम्बेडकर 1923 में विदेश से शिक्षा लेकर भारत आ गए। अमेरिका, लन्दन, जर्मनी अर्थात् पश्चिमी विश्व के तीन अग्रणी देशों के सर्वोत्तम विचारों के सम्पर्क में अम्बेडकर आये। सदियों की गुलामी और हिन्दू-धर्म के अंकुश ने दलित वर्गों को इतना कुण्ठित कर दिया था कि उन्होंने गुलामी को ही अपना भाग्य मान लिया था।

डॉ0 अम्बेडकर ने देश के शूद्रों को स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व का मार्ग बताया। जहाँ सभी मनुष्य समान हैं, कोई किसी से कमतर नहीं हैं। पश्चिम के लोकतान्त्रिक आदर्श का सार है—प्रत्येक व्यक्ति की प्रतिष्ठा और उसके महत्त्व पर आस्था। डॉ0 अम्बेडकर पश्चिम की इहवादी सभ्यता को प्रमुखता देते थे। पुनर्जन्म, कर्म, भाग्य, आस्था आदि जैसे विषय में उनकी रूचि नहीं थी। मधु लिमये के अनुसार, ''डॉ0 अम्बेडकर ने इस दर्शन को और इस धार्मिक दृष्टि को नही माना, विरूप यथार्थ के समक्ष उन्होंने अपने को असहाय महसूस नहीं किया बल्कि उन्होंने अन्याय से लड़ने और सामाजिक व्यवस्था को बदलने का संकल्प किया।''[25] वह आर्य समाज से भी सहमत नहीं थे जो जाति के प्रचलित रूप की निन्दा करते थे किन्तु वर्ण-प्रणाली की प्रशंसा करते थे। गांधी जी भी अस्पृश्यता का विरोध करते थे परन्तु वर्ण-प्रणाली का समर्थन करते थे।

मधु लिमये इस विषय में कहते हैं कि, ''डॉ0 अम्बेडकर और गांधीजी के बीच अन्त तक चले संघर्ष का यही मूल कारण था। यह संघर्ष लगभग 25 वर्ष तक चलता रहा और वर्ष-प्रति-वर्ष इसकी

कटुता बढ़ती गई। एक या दो मौकों पर लगा कि यह संघर्ष खत्म हो जाएगा और दोनों मिलकर काम करेंगे। किन्तु दृष्टिकोणों में बुनियादी फर्क होने के कारण यह आशा निराधार ही थी।''[26] लिमये दोनों महान् व्यक्तित्व के अन्तर में परिवेश को मुख्य मानते हैं। गांधीजी को जहाँ वैष्णव, जैन, माँ, सोसायटी आफॅ फ्रेंडस, ईसाई प्रभाव, थोरो, रस्किन और ताल्स्ताय का सहयोग और समर्थन मिला, वहीं डॉ0 अम्बेडकर को यह सब प्राप्त नहीं हुआ। डॉ0 अम्बेडकर को वह शासन और मनुष्य ज्यादा ठीक लगता है जो कमजोर, वंचित और शोषित समाज को मुख्यधारा में लेकर आये। ब्रिटिश शासन में दलितों और महिलाओं को मनुष्य समझा गया था, जबकि हजारों साल से ब्राह्मणवादी और सामन्तवादी शासन में दलितों, महिलाओं को मनुष्य ही नहीं माना गया था।

लिमये इस अध्याय में गोलमेज सम्मेलन, कोरेगाँव की लड़ाई पर प्रकाश डालते हैं। 1938 में रेल मजदूरों को संबोधित करते हुए डॉ0 अम्बेडकर ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि हमारी लड़ाई ब्राह्मणवाद और पूँजीवादी व्यवस्था से हैं। ब्राह्मणवाद से अभिप्राय स्वतन्त्रता, समानता और भाईचारे की भावना का निषेध है। जो किसी भी वर्ग में हो सकती हैं, यद्यपि इसकी शुरूआत ब्राह्मणों ने की। इसके विरोध में खड़ा होना ही उनका मुख्य ध्येय था। दूसरे गोलमेज सम्मेलन में गांधी और अम्बेडकर के बीच दलित वर्गों के प्रतिनिधित्व को लेकर जो बहस हुई उसके सन्दर्भ में लिमये कहते हैं कि, ''अम्बेडकर ने गांधी के इस विचार का जोरदार विरोध किया। अपनी सामान्य मुंहफट शैली में उन्होंने कहा.....।''[27] लिमये जी डॉ0 अम्बेडकर के तर्क और साहसी क्रान्तिकारी शैली को मुंहफट शैली कहते है; लगता है समाजवादी लिमये भी गांधी जी के प्रभाववश डॉ0 अम्बेडकर की शैली को समझ नहीं पाए।

यहाँ मैं लिमये जी के डॉ0 अम्बेडकर पर दिए गए तर्क और साहस की प्रशंसा करना चाहूँगा। जहाँ तथाकथित जातिवादी वर्ग दलितों के ब्रिटिश शासन में नौकरी करने को लेकर घृणा का रवैया अपनाता हैं और उन पर विश्वासघात का आरोप लगाता हैं तब लिमये कहते हैं कि, ''मैं उन्हें याद दिलाना चाहूँगा कि जिस बंगाल आर्मी ने उत्तर भारत को अंग्रेजों के लिए जीता और सिख-शक्ति को नष्ट किया, उसमें मुख्यरूप से ब्राह्मण, राजपूत और अन्य उच्चमर्णीय थे। इन जातियों ने दो हजार साल तक साधारण जनता पर अपना वर्चस्व बनाए रखा। तथापि विदेशियों की चाकरी करने में न तो इन्हें शर्म आई और न इनमें देशभक्ति की रंचमात्र भावना ही जागी। वे रोटी के चन्द टुकडों के लिए अपने को बेचने के लिए तैयार हो गए।''[28] लिमये आगे कहते हैं कि, ''...जहाँ तक अम्बेडकर के भरती-अभियान का सवाल है, इतना कहना होगा कि गांधीजी ने भी प्रथम विश्वयुद्ध में अंग्रेजों की सेना में भरती होने के लिए प्रचार किया था। उस समय उन्हें अंग्रेजों की मंशा पर पूरा भरोसा था। इसी तरह सावरकर और हिन्दू-सभाइयों ने भी दूसरे विश्वयुद्ध के समय सेना में भरती होने का अभियान चलाया था।''[29]

गांधीजी जहाँ वर्णाश्रम-व्यवस्था का समर्थन करते थे और अपने-अपने वर्णानुसार कार्य करने को प्रमुखता देते थे। गांधी जी के मत से आध्यात्मिक शिक्षण ब्राह्मण का धंधा भंगी के धंधे के बराबर है और इन धंधों का काम करने वालों को ईश्वर की नजर में बराबर का सम्मान मिलता है। तब डॉ0 अम्बेडकर ने गांधीजी से पूछा कि तब तो ''महात्मा जन्म से बनिया हैं। अतः उनका और

उनके बाप-दादों का पेशा व्यापार-धंधा है। किन्तु उनके बाप-दादा व्यापार छोड़कर रियासतों में दीवान बने जो ब्राह्मण का पेशा है। महात्मा ने स्वयं भी वकालत का पेशा चुना। उन्होंने अपने बाप-दादों के पेशे को अपनाते हुए कभी तराजू नहीं छुआ। उनके सबसे छोटे लड़के देवदास ने जो वैश्य के रूप में पैदा हुआ था, ब्राह्मण लड़की से शादी की और पत्रकार बना। क्या महात्मा ने अपने बाप-दादों का पेशा न अपनाने के लिए उसकी निंदा की?''[30]

गांधीजी के करनी और कथनी के विषय में लिमये कहते हैं कि, ''.....गांधीजी द्वारा 'रक्त और आनुवांशिकता' के आधार पर और योग्यता के बजाय जन्म के सिद्धान्त के आधार पर चातुर्वर्ण्य का समर्थन, सहभोज की पाबन्दियों का युक्तिकरण, संयम तथा इच्छाशक्ति की साधना के आधार पर मिश्रत विवाहों की पाबन्दी का समर्थन स्पष्ट तौर पर गलत था। अम्बेडकर की यह मान्यता थी कि अन्तर्जातीय विवाह असली समाधान है और तर्क की दृष्टि से बहुत मजबूत थी।.....अम्बेडकर की दूरदृष्टि और विवेक-शक्ति की प्रशंसा के लिए यही आधार काफी है कि गांधी जी ने अपने अन्तिम वर्षों में अपनी पुरानी मान्यताओं को बदल डाला।''[31] इस प्रकार जाति-उन्मूलन के प्रश्न पर महात्मा गांधी के विचारों में परिवर्तन लाने में अम्बेडकर सफल रहे।

'पृथक् निवार्चक मण्डल की माँग और येरवडा समझौता' पाठ में लिमये गांधीजी और डॉ0 अम्बेडकर के बीच होने वाले टकराहट और समझौतों के विषय में कहते है कि सन् 1927 में ब्रिटेन की कंजर्वेटिव सरकार ने सर जॉन साइमन की अध्यक्षता में आयोग गठित किया जिसकों भारत में 'साइमन कमीशन' कहते हैं। कांग्रेस और जिन्ना ने आयोग का विरोध किया था। आगाखां और फजली हुसैन के 'सर्वदलीय मुस्लिम सम्मेलन' ने इसके साथ सक्रिय सहयोग किया। दलित समाज को मोंटफोर्ड सुधारों के अन्तर्गत विधान मण्डलों में प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था क्योंकि उनके पक्ष को प्रस्तुत करने वाले योग्य प्रतिनिधि भी नहीं थे। मधु लिमये कहते हैं कि, ''डॉ0 अम्बेडकर ही इसका अपवाद थे। वे दलित वर्गों के नेताओं में सबसे प्रतिभाशाली थे। उनका दर्जा ऊँचा था तथा उनकी योग्यता तथा विद्वता की धाक इतनी व्यापक थी कि वे भारत के नेताओं में अपनी अलग पहचान रखते थे। वे दलित वर्गों की माँगों को प्रस्तुत करने के काम में आगे बढ़े। अम्बेडकर भारत के सर्वाधिक शिक्षित और संवेदनशील लोगों में थे।''[32] बाबा साहेब ने कमीशन का समर्थन किया क्योंकि वह कृतसंकल्प थे कि दलित वर्गों के साथ न्याय होना चाहिए। दलित वर्ग को लेकर दोहरी समस्या थी। पहली कि दलित समाज को मतदाता सूचियों में शामिल करना क्योंकि गरीबी, बिना जमीन, घर और आमदनी के सूची में शामिल करना बहुत कठिन था दूसरी समस्या प्रतिनिधित्व की मात्रा थी। गांधीजी वयस्क मताधिकार के पक्ष में थे, नेहरू-रिपोर्ट में भी इसका समर्थन किया था।

डॉ0 अम्बेडकर द्वारा राजनीतिक माँगों पर विचार करने के लिए अखिल भारत दलित वर्ग कांग्रेस का सम्मेलन 8 अगस्त 1930 को नागपुर में डॉ0 अम्बेडकर की अध्यक्षता मे जो प्रस्ताव पारित हुआ उसमें सात बिन्दु थे—जैसे औपनिवेशिक दर्जा, उत्तरदायित्व सौंपना, सामाजिक स्थितियों का ध्यान रखना, विधानमण्डलों में दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व, संयुक्त निर्वाचक-मण्डल में आरक्षित स्थान, सरकारी नौकरियों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व, सेना को भारत

सरकार के हाथ में रखना। गांधीजी ने गोलमेज सम्मेलन में दलितों को अलग वर्ग में रखने का विरोध किया, जबकि मुस्लिमों को पृथक् निर्वाचक मण्डल विषय पर सहमति दी। गांधीजी ने कहा कि, ''क्या अस्पृश्य हमेशा अस्पृश्य ही रहेंगे? अस्पृश्यता जीवित रहे इसके बजाय तो मैं चाहूँगा कि हिन्दू-धर्म खत्म हो जाए।'' गांधीजी का कथन आज कितना अप्रासंगिक बन जाता है। मधु लिमये कहते हैं कि, ''मुझे लगता है कि गांधीजी को उनके साथ ज्यादा सहृदयता से बर्ताव करना चाहिए था। उन्हें संयुक्त निर्वाचक और दलितों की जनसंख्या के अनुपात में आरक्षित सीटों के प्रस्ताव का विरोध नहीं करना चाहिए था। .....अगर गांधीजी ने दूसरे गोलमेज सम्मेलन से पहले डॉ0 अम्बेडकर से यह प्रस्ताव किया होता तो इतनी कटुता पैदा न होती। लेकिन गांधी जी कभी-कभी अपनी जिद्द पर अड़ जाते थे।''[33] इसी जिद्द के कारण गांधीजी ने 11 मार्च 1932 को भारत सचिव सैम्यूल होर को पत्र लिखा जिसमें कहा कि अगर उन्होंने पृथक् निर्वाचक मण्डल का निर्णय लिया, तो वे आमरण अनशन करेंगे। अपनी जान तक दे सकते है।

इतिहास गवाह है 'यरवदा जेल' में गांधीजी ने आमरण अनशन किया। पंडित नेहरू तो पहले से ही इस विषय को प्राथमिकता में नहीं रखते थे। डॉ0 अम्बेडकर को लन्दन और भारत में चारों तरफ से मानसिक और शारीरिक दबाव झेलना पड़ा। लिमये गांधीजी के इस निर्णय पर कहते हैं कि, ''गांधी ने न सिर्फ पृथक् निर्वाचक मण्डल का विरोध किया था बल्कि दलित वर्गों के लिए किसी भी प्रकार के विशेष प्रतिनिधित्व को भी अस्वीकार किया था।.....वे दलित वर्गों को कोई रियायत देने को तैयार नहीं थे।''[34] डॉ0 अम्बेडकर ने मनुष्यता का धर्म निभाते हुए गांधीजी के प्राणों की रक्षा की। मजबूरनवश आरक्षण पर समझौता करना पड़ा। लिमये के शब्दों में, ''.....गांधी ने सवर्ण हिन्दुओं की सोई हुई आत्मा को जगाकर अपने को गौरवान्वित किया, लेकिन मेरे विचार से डॉ0 अम्बेडकर का काम ज्यादा महान् था। उन्होंने अपने को अन्याय के खिलाफ अनथक संघर्षशील व्यक्ति के साथ-साथ महान् भारतीय सिद्ध किया।''[35]

मधु लिमये अपने विषय में लिखते है कि जब मैंने कालेज में प्रवेश लिया तो एक नई दुनिया से परिचय हुआ। मुझमें राजनीतिक चेतना आई। तभी से राजनीतिक आन्दोलनों में सक्रिया हो गया। तभी मैंने डॉ0 अम्बेडकर का पूना के गोखले-सभागार में भाषण सुना जिसमें उन्होंने गांधीजी के विषय में कहा था कि गांधी युग में अज्ञान, अन्धश्रद्धा और धार्मिक उत्साह को ज्यादा महत्त्व मिला, जबकि रानाडे ने बुद्धिवाद-विमुखता को प्रोत्साहन दिया। इसलिए रानाडे जहाँ विद्या-प्रेम के प्रशंसक थे, वही गांधीजी मन की बात करते थे। डॉ0 अम्बेडकर के शब्दों में, ''अधनंगे नेता और बुद्धिवाद तथा अनुभव के स्थान पर भीतर की आवाज का शासन।''[36]

लिमये अध्याय में दोनों महापुरुषों का तुलनात्मक अध्ययन करते है। डॉ0 अम्बेडकर गांधी के नेृतत्व वाली कांग्रेस को पूँजीपतियों का समर्थन था—घनश्यामदास बिड़ला उनके अग्रणी थे। अम्बेडकर के मन में व्यापारी वर्गों और उनके सबसे ऊँचे सदस्य के प्रति वितृष्णा थी। इसीलिए डॉ0 अम्बेडकर कहते है कि,''गांधी युग भारत का अंधकार युग है।''[37] लिमये अध्याय के अन्तिम पृष्ठों में कहते हैं कि, '' अम्बेडकर के भाषण ने मुझे बहुत प्रभावित किया। मुझे उनकी बात की सच्चाई का तब अनुमान हुआ, जब मैंने शंकरराव देव, प्रफुल्लचंद्र घोश,

बालूभाई मेहता और कई अन्य गांधीवादियों को देखा और इस बात पर विचार किया कि किस तरह कर्मकाण्ड, व्रत-भोजन सम्बन्धी प्रयोग, दाढ़ी एवं लुंगी तथा तपस्या एवं साधना के अंहकार ने ज्ञान और विद्या को ग्रस लिया था।.....निस्संदेह तसवीर का दूसरा उज्जवल पहलू भी था। गांधी जी ने विशाल मूक जनता की चेतना को जगाया।''[38]

डॉ0 अम्बेडकर को समाजवादियों की नई पार्टी से उम्मीद थी कि भारत में नई राजनीति की शुरूआत होगी। दलित वर्गों और अन्य पिछड़ें वर्गों को एक तीसरी पार्टी का गठन करना चाहिए ताकि इन दोनों पार्टियों को मजबूर करके सामाजिक परिवर्तन के कार्यक्रम को आगे बढ़ाया जाए। लिमये का मानना था कि गांधीजी द्वारा जातिवाद को लेकर बनाई गई अवधारणाओं को बदलने के लिए मजबूर होना पड़ा। उन्होंने स्वयं ऐसे विवाह मे जाना बन्द कर दिया था जो सजातीय होते थे। लिमये का मानना था कि, 'गांधीजी की हत्या न होती तो डॉ0 अम्बेडकर और गांधीजी के बीच एक अच्छी संभावना बनती' जो हो सम्भव हो न सका ।

भारत को ब्रिटिश शासन से आजादी प्राप्त हुई परन्तु उसकी भारी कीमत भी चुकानी पड़ी —पाकिस्तान के रूप में। पाकिस्तान के अस्तित्व में आने और उसके विभिन्न पहलुओं पर अनेक विद्वानों ने काम किया हैं । डॉ0 अम्बेडकर की पाकिस्तान को लेकर महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। मधु लिमये इसी पुस्तक का विश्लेषण 'अम्बेडकर की पाकिस्तान विषयक भूमिका' अध्याय में करते है। वह कहते है कि देश विभाजन के कई कारण थे; जैसे—कांग्रेस -मुस्लिम लीग के नेताओं की उठा-पटक, ब्रिटिश शासन की फूट डालो शासन की नीति और इसकी जड़ें आठ सौ साल पूर्व इस्लाम और हिन्दू-धर्म के अनसुलझे संघर्ष तक और हिन्दू-समाज की शक्ति को क्षीण करने वाले हजारों साल के सामाजिक विघटन एवं दुर्बलता तक जाती हैं।

मधु लिमये कहते हैं कि, ''1940 में मुस्लिम लीग के पाकिस्तान सम्बन्धी प्रस्ताव के प्रकाशित होने के बाद डॉ0 अम्बेडकर ने हिन्दू-मुस्लिम समस्या की जो विद्वतापूर्ण व्याख्या की, वह उनके पांडित्य का प्रमाण है। अम्बेडकर का उद्देश्य था, लोगों को जगाना और उत्प्रेरित करना।''[39] उन्होंने बता दिया था कि अंग्रेज देश का बँटवारा कर सकते हैं और उसके कई टुकड़े करने में भी उन्हें हिचक नहीं होगी बशर्ते कि सभी टुकड़े साम्राज्य के साथ रहें। कांग्रेसी नेताओं ने भ्रम पाल रखा था कि आजादी हमें बिना किसी समस्या के मिल जायेगी। सरदार पटेल के पत्रों में 1946 तक यही भ्रम बना रहा। उनका भ्रम तब टूटा जब अन्तरिम सरकार बनी। लिमये कहते हैं कि, ''उनका भ्रम तब टूटा जब उन्हें अन्तरिम सरकार में काम करने का अनुभव हुआ और तब वे विभाजन के जबर्दस्त समर्थक हो गए। उसके बाद बल्लभभाई पटेल ने यह साफ समझ लिया कि विभाजन स्वीकार करके मुस्लिम लीग और मुस्लिम समस्या से पीछा छुड़ाना बेहतर होगा।''[40] लाहौर-प्रस्ताव 1940 के बाद डॉ0 अम्बेडकर को विभाजन की निश्चित सम्भावना दिखने लगी थी।

डॉ0 अम्बेडकर दूरदृष्टा थे। वह जान रहे थे कि मुस्लिम नेता पाकिस्तान बनाने की ओर अग्रसर थे। गोलमेज सम्मेलन के समय मुस्लिम लीग के नेताओं ने पाँच प्रान्तों में जो मुस्लिम बहुमत वाले हो के पक्ष में थे। ज्यादातर मुस्लिम नेताओं की माँगें जिन्ना के चौदह सूत्री प्रोग्राम में

शामिल हो गई थी। कलकत्ता के सर्वदलीय सम्मेलन 1929 में जिन्ना ने नेहरू-रिपोर्ट में अपना संशोधन रखा था जिसको गरमदलियों, राष्ट्रवादी मुसलमानों और हिन्दू महासभाइयों ने नहीं माना। लेकिन मैक्डोनाल्ड ने साम्प्रदायिक निर्णय में इन माँगों को रख लिया था। 1935 अधिनियम के तहत मुस्लिम लीग को उम्मीद थी कि उन्हें प्रान्तीय स्वायत्तता के कार्यान्वयन में साझेदारी मिलेगी, परन्तु प्रान्तीय स्वायत्ताा लागू होने के दो साल बाद 1937 में ऐसा नहीं हुआ। इस विषय में डॉ0 अम्बेडकर सोचते थे कि कांग्रेस ने मुस्लिम लीग को दो स्तर पर चिढ़ाने वाला काम किया। पहला मुस्लिम लीग संस्था को मान्यता न देना दूसरा कांग्रेस बहुमत वाले प्रान्तों में संयुक्त मन्त्रिमण्डल बनाने से कांग्रेस का इनकार। कांग्रेस ने गैर-मुस्लिम लीग संस्थाओं से बातचीत की मुस्लिम लीग से नहीं। डॉ0 अम्बेडकर इन्हीं सब कारणों को पाकिस्तान के अलग देश बनने के पीछे के कारणों में से मानते हैं कि, ''मुस्लिम जनता से सम्पर्क करने की जवाहरलाल की नीति पागलपन थी। इससे मुसलमानों में कांग्रेस का कोई आधार नहीं बना किन्तु मुस्लिम लीग को अपनी बात पर अड़ने का मौका मिल गया। मुस्लिम जनता के साथ सम्पर्क की यह विचारहीन योजना पाकिस्तान के उदय के लिए काफी हद तक जिम्मेदार है।''[41]

मधु लिमये का मानना था कि डॉ0 अम्बेडकर का मुस्लिम राजनीति के तौर तरीकों से कोई सहानुभूमि नहीं थी। उनका तरीका वस्तुस्थिति का विश्लेशणात्मक ढ़ंग से मुसलमानों के मन का अध्ययन करना था न कि अन्धभक्ति। इसी कारण लिमये कहते हैं कि, ''.....लेकिन इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि भारतीय नेताओं में अकेले डॉ0 अम्बेडकर ही थे जिन्होंने दावों, सूत्रों और समाधानों के जंगल में एक स्पष्ट दिशा देखी। कालान्तर में भारत की आजादी और संवैधानिक समाधान ठीक वैसे ही हुआ जैसे डॉ0 अम्बेडकर ने सुझाया था।''[42] डॉ0 अम्बेडकर मुस्लिम लीग की गुंडा राजनीति को पसन्द नहीं करते थे। परन्तु धर्मनिरपेक्ष जिन्ना के प्रशंसक थे, किन्तु जिन्ना के बुद्धिवाद से अबुद्धिवाद की ओर अधोगति को गलत भी बताया था। डॉ0 अम्बेडकर के मसौदे को ही बाद में कैबिनेट प्रतिनिधि मण्डल ने और वाइसराय ने भी 1946 में इस तर्क को स्वीकार किया कि क्या तो जिन्ना सीमित केन्द्र को स्वीकार करें या कटा हुआ पाकिस्तान। जिसको जिन्ना ने पाकिस्तान स्वीकार किया। मधु लिमये ने माना कि यह सुझाव डॉ0 अम्बेडकर का ही दिया हुआ था।

डॉ0 अम्बेडकर ने कश्मीर और हैदराबाद पर मुस्लिम लीग से अनुरोध किया था उन्हें किसी एक पर दावा करना चाहिए। परन्तु उनकी बेईमानी कहें या सिद्धान्तहीनता कि उन्होंने एक तरफ मुस्लिम आबादी के कारण कश्मीर लेने की बात कही दूसरी तरफ हैदराबाद के मुस्लिम राजा के कारण दावा किया। दिशाहीनता के कारण मुस्लिम लीग से दोनों प्रान्त ही हाथ से जाते रहें।

डॉ0 अम्बेडकर को राजनीतिक आजादी से पहले साम्प्रदायिक समस्या को हल करने पर बल था। उन्होंने कहा कि विभाजन के बाद एक भारत परिशद् बनाई जाए जो दोनों मुल्कों के सहयोग की बात करेंगी। उन्हें उम्मीद थी कि कालान्तर में दोनों मुल्क फिर एक हो जाएँगे। उन्हें भारत से भरपूर देशभक्ति थी तभी तो उन्होंने देश की सीमाओं की सुरक्षा पर बल देते हुए कहा कि

हमें उत्तर-पश्चिम सीमाओं को सुरक्षित बनाने के लिए सावधान रहना होगा। आजाद भारत में प्रशिक्षण देकर और आधुनिक हथियार उपलब्ध करवा कर हम सीमाओं को सुरक्षित कर सकते है।

अंग्रेजों ने योद्धा जातियों यानी मार्शल रेस की बात की हैं; जिसको डॉ0 अम्बेडकर ने स्वीकार नहीं किया। उनका कहना था कि प्रशिक्षण और अनुशासन से किसी भी रेस को बहादुर रेस बनाया जा सकता हैं। लिमये यहाँ डॉ0 अम्बेडकर को लेकर कहते हैं कि, 'एक बार फिर बुद्धिवादी अम्बेडकर, पाकिस्तान और इस्लाम की सैद्धांतिक भूमिका में बह गए और हिन्दुस्तान के विरद्ध एक विशाल इस्लामी राज्य की कल्पना करने लगे.....ऐसा लगता है कि डॉ0 अम्बेडकर उचित को अनुचित तर्क से हिन्दुओं को विश्वास दिलाकर या डराकर, उन्हें पाकिस्तान को स्वीकार कर लेने को तैयार कर रहे थे।' ऐसा डॉ0 अम्बेडकर क्यों कर रहें थे? क्योंकि वह चाहते कि शूद्रों विषेशकर दलितों को जीवन जीने का अधिकार मिले; जो उनको हजार वर्षों से नहीं मिला था। लिमये कहते है कि डॉ0 अम्बेडकर ने इसके लिए साधन तैयार कर दिए हैं, इससे अधिक एक आदमी क्या कर सकता था?

'सशक्त केन्द्र के लिए' पाठ में मधु लिमये डॉ0 अम्बेडकर के चिन्तन पर प्रकाश डालते हुए कहते है कि डॉ0 अम्बेडकर विकेन्द्रीकरण के समर्थन में नहीं थे। वह हमेशा मजबूत केन्द्र के पक्षधर थे। वह जानते थे कि सवर्णों के अत्याचार को समाप्त करने और सामाजिक समता लाने के लिए केन्द्र के पास शक्ति होना जरूरी है। न्याय और औचित्य की कल्पना हिन्दू समाज की प्रधान कल्पना नही है और नहीं उसकी नैतिकता की चेतना प्रबल है। देश में स्थानीय स्तर पर बहुसंख्यक प्रबल जाति क्षेत्र पर शासन करती हैं; जो वंचितों, दलितों पर जुल्म ढाने का मौका नहीं छोड़ती। अगर स्थानीय स्तर पर ज्यादा कानूनी शक्तियाँ दी जायेगी तो वंचित समाज को न्याय नहीं मिल पाएगा। क्योंकि डॉ0 अम्बेडकर ने सवर्णों के अमानवीय व्यवहार को सहा था। इस सन्दर्भ में लिमये कहते हैं कि, ''अम्बेडकर ने इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था का पूरा आतंक सहा था और वे जानते थे कि स्थानीय स्तर पर दलितों को यहाँ न्याय नहीं मिल सकता। वे अंग्रेजों के पिट्ठू नहीं थे। सवर्ण हिन्दुओं और राष्ट्रवादी समाचार-पत्रों ने उनका ब्रिटिश साम्राज्यवाद का पिट्ठू कहकर निन्दा की थी। वे वास्तव में देशभक्त थे।''[43]

डॉ0 अम्बेडकर ने संविधान और संविधान सभा में केन्द्र के अधिकार, सर्वोच्य न्यायालय के निर्णयों आदि विषय पर गम्भीर बहस की थी। वह चाहते है कि समाज के वंचित वर्गों को न्याय मिले उनके तर्क और न्याय के तरीकों से जिन्ना भी सहमत थे। पाठ में दोनों के बीच हुए संवाद को देखा जा सकता है। एक दूसरा पक्ष भी था जो ग्राम-पंचायत को संवैधानिक अधिकार देना चाहता था। लिमये कहते हैं कि, ''हमारे यहाँ महात्मा गांधी और कुछ अन्य लोग इस विचार-प्रणाली के समर्थक थे कि स्वतन्त्र भारत का संवैधानिक ढाँचा पुरानी ग्राम-पंचायत के आधार पर तैयार किया जाए। उन्हें वेस्ट मिनिस्टर आदर्श की लोकतान्त्रिक प्रणाली स्वीकार्य नहीं थी। वे सोचते थे कि यह भारत के लिए अनुकूल नहीं है। वे चाहते थे कि ग्राम-पंचायतों को मूल इकाइयाँ मानकर परोक्ष प्रणाली से सारा ढाँचा खड़ा किया जाए।''[44]

मधु लिमये डॉ0 राममनोहर लोहिया के पक्ष को भी सामने रखते हैं कि, ''राममनोहर लोहिया जैसे विकेन्द्रीकरणवादी भी संसदीय लोकतन्त्र के समर्थक थे। उनका इतना ही सुझाव था कि सार्वजनिक ढाँचा दो स्तर के बजाय चार स्तर पर खड़ा किया जाए। वे अपने ''चोखंभा-राज'' की योजना के अन्तर्गत जिला-पंचायतों, नगरपालिकाओं और ग्राम-पंचायतों को संवैधानिक दर्जा देना चाहते थे।''[45] जबकि डॉ0 अम्बेडकर को ग्राम-पंचायत की संस्था से कोई लगाव नहीं था। उन्होंने कहा भी कि, 'भारत के बुद्धिजीवी ग्राम-पंचायतों के प्रति जो प्रेम दिखाते हैं वह दयनीय है।' जो लोग प्रान्तवाद और सम्प्रदायवाद की निन्दा करते हो वह गाँवों के समर्थक बनते हैं। वैसे भी डॉ0 अम्बेडकर की नजर में भारत के गाँव जातिवाद के कारखाने हैं। वहाँ शक्तिषाली जाति शासन पर नियन्त्रण करके वंचितों और दलितों पर शासन करती हैं। 'भाषावार प्रान्त-रचना और अम्बेडकर', 'कानून मन्त्री अम्बेडकर', 'डॉ0 अम्बेडकर के आर्थिक विचार' आदि अध्यायों में डॉ0 अम्बेडकर के जो विचार प्रेषित हुए हैं, उनका कुछ संक्षिप्त सार उपर्युक्त शोध-पत्र में प्रयोग किया जा चुका है। पुस्तक के अन्तिम अध्याय 'डॉ0 अम्बेडकर और धर्म-परिवर्तन' पर विश्लेशण जरूरी बन जाता है।

14 अक्टूबर 1956 को डॉ0 अम्बेडकर ने नागपुर में लाखों अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म अपना लिया। लगभग 21 वर्ष पहले बाबा साहेब ने नवम्बर 1935 में यरवला, नासिक में अनुसूचित जाति सम्मेलन में कहा था कि अगर हमें सवर्णों ने 'समान व्यवहार और प्रतिष्ठा' नहीं देते तो हम दूसरे किसी धर्म हो चुनेंगे जो हमें मनुष्य होने का अहसास दिलायें। गांधीजी को इस घोषणा से सदमा लगा कि यह नहीं होना चाहिए। गांधीजी को लगा कि कविधा तथा अन्य गाँवों में दलितों पर जो अत्याचार, जान-माल की हिंसा हुई हैं; यह उसकी प्रतिक्रिया है। परन्तु यह घोषणा किसी एक घटना की प्रतिक्रिया नहीं थी बल्कि सदियों की हिंसा से मुक्ति का सवाल था।

डॉ0 अम्बेडकर प्रतिदिन दलितों पर होने वाले अत्याचारों को देख रहे थे और उनके खिलाफ अपनी पत्रिकाओं में लिख भी रहे थे। दूसरी तरफ गांधीजी देश की राजनीति में नायक बन गए थे। उन्होंने अस्पृश्यता निवारण की बात तो की परन्तु उसकी जड़ वर्ण व्यवस्था को महत्त्वपूर्ण मानते थे। तब जाति व्यवस्था का अन्त कैसे हो सकता था? अस्पृश्यता निवारण की गति भी बहुत मन्द गति से चल रही थी। जिसको मधु लिमये धर्मांतरण के कारणों में से एक मानते हैं। अशिक्षित, गरीब, असहाय दलित समाज अपनी मूलभूत जरूरतों के लिए विवश था। जाति के कारण दलितों पर होने वाली हिंसा से गांधीजी अस्पृश्यता के स्तर पर बात कर रहे थे जबकि डॉ0 अम्बेडकर अस्पृश्यता की जड़ वर्णाश्रम-व्यवस्था को समाप्त करने की बात ही नहीं; बल्कि सवर्णों से संघर्ष और विश्व मंच पर आवाज उठा रहे थे। लिमये के शब्दों में, ''गांधी जी ने अम्बेडकर को सावधान किया कि सीधे-सीधे करोड़ों निरक्षर दलित उनकी बात नहीं सुनेंगे। उन्होंने अम्बेडकर को यह विश्वास भी दिलाया कि इन छिटपुट अत्याचारों के बावजूद अस्पृश्यता का अन्त अब निकट आ गया है। जहाँ गांधी की यह बात ठीक थी कि करोड़ों लोग धर्म परिवर्तन के लिए तैयार नहीं होंगे, वहीं गांधी की आशा निर्मूल थी कि सवर्णों में चेतना आएगी और दलितों के खिलाफ अत्याचारों का जल्दी ही अन्त होगा।''[46] समय के साथ बदलते समाज में डॉ0 अम्बेडकर का विचार दलित समाज को केन्द्र में ले आया हैं; वहीं दलितों के लिए गांधी जी का विचार पीछे छूट गया है।

सन्दर्भ-सूची

1. मधु लिमये, **डॉ0 अम्बेडकर : एक चिन्तन**, पृ0सं0 01.
2. वही, पृ0सं0 01.
3. वही, पृ0सं0 01.
4. वही, पृ0सं0 02.
5. वही, पृ0सं0 05.
6. वही, पृ0सं0 6, 7.
7. वही, पृ0सं0 7.
8. वही, पृ0सं0 7.
9. वही, पृ0सं0 9.
10. वहीं, पृ0सं0 11.
11. वही, पृ0सं0 12.
12. वही, पृ0सं0 12,13.
13. वही, पृ0सं0 14.
14. वही, पृ0सं0 16.
15. वही, पृ0सं0 16.
16. वही, पृ0सं0 18.
17. वही, पृ0सं0 17.
18. वही, पृ0सं0 18.
19. वही, पृ0सं0 18.
20. वही, पृ0सं0 23.
21. वही, पृ0सं0 23.
22. वही, पृ0सं0 25.
23. वही, पृ0सं0 25.
24. वही, पृ0सं0 26.
25. वही, पृ0सं0 28.
26. वही, पृ0सं0 28.
27. वही, पृ0सं0 31.
28. वही, पृ0सं0 32.
29. वही, पृ0सं0 32.
30. वही, पृ0सं0 35.
31. वही, पृ0सं0 35, 36.
32. वही, पृ0सं0 38.
33. वही, पृ0सं0 41.
34. वही, पृ0सं0 43.

35. वही, पृ0सं0 43.
36. वही, पृ0सं0 48.
37. वही, पृ0सं0 48.
38. वही, पृ0सं0 50.
39. वही, पृ0सं0 68. यह उदाहरण मीडिया स्टडीज ग्रुप पुस्तक से है
40. वही, पृ0सं0 68.
41. वही, पृ0सं0 55.
42. वही, पृ0सं0 58.
43. वही, पृ0सं0 65.
44. वही, पृ0सं0 72.
45. वही, पृ0सं0 72, 73.
46. वही, पृ0सं0 118, 119. ★

https://doi.org/10.62047/JNDH.2025.10.31.1